कहानी

चीफ की दावत

भीष्म साहनी

आज मिस्टर शामनाथ के घर चीफ की दावत थी। शामनाथ और उनकी धर्मपत्नी को पसीना पोंछने की फुर्सत न थी। पत्नी ड्रेसिंग गाउन पहने, उलझे हुए बालों का जूड़ा बनाए मुँह पर फैली हुई सुर्खी और पाउडर को मले और मिस्टर शामनाथ सिगरेट पर सिगरेट फूँकते हुए चीज़ों की फेहरिस्त हाथ में थामे, एक कमरे से दूसरे कमरे में आ-जा रहे थे।

आखिर पाँच बजते-बजते तैयारी मुकम्मल होने लगी। कुर्सियाँ, मेज़, तिपाइयाँ, नैपकिन, फूल - सब बरामदे में पहुँच गए। ड्रिंक का इन्तज़ाम बैठक में कर दिया गया। अब घर का फालतू सामान अलमारियों के पीछे और पलंगों के नीचे छिपाया जाने लगा। तभी शामनाथ के सामने सहसा एक अड़चन खड़ी हो गई, माँ का क्या होगा?

इस बात की ओर न उनका और न उनकी कुशल गृहिणी का ध्यान गया था। मिस्टर शामनाथ, श्रीमती की ओर घूम कर अँग्रेज़ी में बोले, “माँ का क्या होगा?”

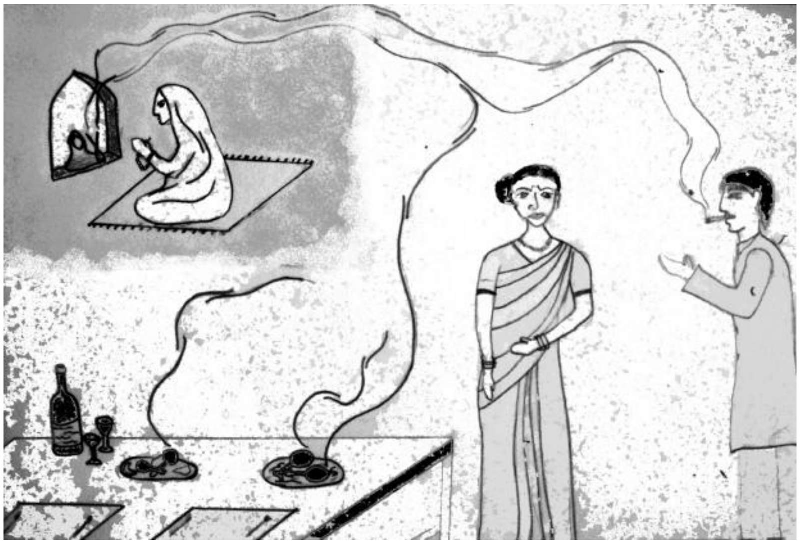

श्रीमती काम करते-करते ठहर गईं, और थोड़ी देर तक सोचने के बाद बोलीं, “इन्हें पिछवाड़े इनकी सहेली के घर भेज दो, रात-भर बेशक वहीं रहें। कल आ जाएँ।”

शामनाथ सिगरेट मुँह में रखे, सिकुड़ी आँखों से श्रीमती के चेहरे की ओर देखते हुए पल-भर सोचते रहे, फिर सिर हिला कर बोले, “नहीं, मैं नहीं चाहता कि उस बुढ़िया का आना-जाना यहाँ फिर से शुरू हो। पहले ही बड़ी मुश्किल से बन्द किया था। माँ से कहें कि जल्दी ही खाना खा के शाम को ही अपनी कोठरी में चली जाएँ। मेहमान कहीं आठ बजे आएँगे, इससे पहले ही अपने काम से निबट लें।”

सुझाव ठीक था। दोनों को पसन्द आया। मगर फिर सहसा श्रीमती बोल उठीं, “जो वह सो गईं और नींद में खर्राटे लेने लगीं, तो? साथ ही तो बरामदा है, जहाँ लोग खाना खाएँगे।”

“तो इन्हें कह देंगे कि अन्दर से दरवाज़ा बन्द कर लें। मैं बाहर से ताला लगा दूँगा। या माँ को कह देता हूँ कि अन्दर जा कर सोएँ नहीं, बैठी रहें, और क्या?”

“और जो सो गईं, तो? डिनर का क्या मालूम कब तक चले। ग्यारह-ग्यारह बजे तक तो तुम ड्रिंक ही करते रहते हो।”

शामनाथ कुछ खीज उठे, हाथ झटकते हुए बोले, “अच्छी-भली यह भाई के पास जा रही थीं। तुमने यूँ ही

खुद अच्छा बनने के लिए बीच में टाँग अड़ा दी!"

"वाह! तुम माँ और बेटे की बातों में मैं क्यों बुरी बनूँ? तुम जानो और वह जानें।"

मिस्टर शामनाथ चुप रहे। यह मौका बहस का न था, समस्या का हल ढूँढ़ने का था। उन्होंने घूम कर माँ की कोठरी की ओर देखा। कोठरी का दरवाज़ा बरामदे में खुलता था। बरामदे की ओर देखते हुए झट से बोले, "मैंने सोच लिया है" और उन्हीं कदमों माँ की कोठरी के बाहर जा खड़े हुए। माँ दीवार के साथ एक चौकी पर बैठी, दुपट्टे में मुँह-सिर लपेटे, माला जप रही थीं। सुबह से तैयारी होती देखते हुए माँ का भी दिल धड़क रहा था। बेटे के दफ्तर का बड़ा साहब घर पर आ रहा है, सारा काम सुभीते से चल जाए।

"माँ, आज तुम खाना जल्दी खा लेना। मेहमान लोग साढ़े सात बजे आ जाएँगे।"

माँ ने धीरे-से मुँह पर से दुपट्टा हटाया और बेटे को देखते हुए कहा, "आज मुझे खाना नहीं खाना है, बेटा, तुम जो जानते हो, मांस-मछली बने तो मैं कुछ नहीं खाती।"

"जैसे भी हो, अपने काम से जल्दी निबट लेना।"

"अच्छा, बेटा।"

"और माँ, हम लोग पहले बैठक में बैठेंगे। उतनी देर तुम यहाँ बरामदे में बैठना। फिर जब हम यहाँ आ जाएँ, तो तुम गुसलखाने के रास्ते बैठक में चली जाना।"

माँ अवाक बेटे का चेहरा देखने लगीं। फिर धीरे-से बोलीं, "अच्छा बेटा।"

"और माँ आज जल्दी सो नहीं जाना। तुम्हारे खर्राटों की आवाज़ दूर तक जाती है।"

माँ लज्जित-सी आवाज़ में बोलीं, "क्या करूँ, बेटा, मेरे बस की बात नहीं है। जब से बीमारी से उठी हूँ, नाक से साँस नहीं ले सकती।"

मिस्टर शामनाथ ने इन्तज़ाम तो कर दिया, फिर भी उनकी उधेड़-बुन खत्म नहीं हुई। जो चीफ अचानक उधर आ निकला, तो? आठ-दस मेहमान होंगे, देसी अफसर, उनकी स्त्रियाँ होंगी, कोई भी गुसलखाने की तरफ जा सकता है। क्षोभ और क्रोध में वह झुँझलाने लगे। एक कुर्सी को उठा कर बरामदे में कोठरी के बाहर रखते हुए बोले, "आओ माँ, इस पर ज़रा बैठो तो।"

माँ माला सँभालती, पल्ला ठीक करती उठीं, और धीरे-से कुर्सी पर आ कर बैठ गईं।

"यूँ नहीं, माँ, टाँगें ऊपर चढ़ा कर नहीं बैठते। यह खाट नहीं है।"

माँ ने टाँगें नीचे उतार लीं।

"और खुदा के वास्ते नंगे पाँव नहीं घूमना। न ही वह खड़ाऊँ पहन कर सामने आना। किसी दिन तुम्हारी

यह खड़ाऊँ उठा कर मैं बाहर फेंक दूँगा।"

माँ चुप रहीं।

"कपड़े कौन-से पहनोगी, माँ?"

"जो है, वही पहनूँगी, बेटा! जो कहो, पहन लूँ।"

मिस्टर शामनाथ सिगरेट मुँह में रखे, फिर अधखुली आँखों से माँ की ओर देखने लगे, और माँ के कपड़ों की सोचने लगे। शामनाथ हर बात में तरतीब चाहते थे। घर का सब संचालन उनके अपने हाथ में था। खूँटियाँ कमरों में कहाँ लगाई जाएँ, बिस्तर कहाँ पर बिछें, किस रंग के पर्दे लगाए जाएँ, श्रीमती कौन-सी साड़ी पहनें, मेज़ किस साइज़ की हो... शामनाथ को चिन्ता थी कि अगर चीफ का साक्षात माँ से हो गया, तो कहीं लज्जित नहीं होना पड़े। माँ को सिर से पाँव तक देखते हुए बोले, "तुम सफेद कमीज़ और सफेद सलवार पहन लो, माँ। पहन के आओ तो, ज़रा देखूँ।"

माँ धीरे-से उठीं और अपनी कोठरी में कपड़े पहनने चली गईं।

यह माँ का झमेला ही रहेगा, उन्होंने फिर अँग्रेज़ी में अपनी स्त्री से कहा, "कोई ढंग की बात हो, तो भी कोई कहे। अगर कहीं कोई उल्टी-सीधी बात हो गई, चीफ को बुरा लगा, तो सारा मज़ा जाता रहेगा।"

माँ सफेद कमीज़ और सफेद सलवार पहन कर बाहर निकलीं। छोटा-सा कद, सफेद कपड़ों में लिपटा, छोटा-सा सूखा हुआ शरीर, धुँधली आँखें, केवल सिर के आधे झड़े हुए बाल पल्ले की ओट में छिप पाए थे। पहले से कुछ कम कुरूप नज़र आ रही थीं।

"चलो, ठीक है। कोई चूड़ियाँ-वूड़ियाँ हों, तो वह भी पहन लो। कोई हर्ज़ नहीं।"

"चूड़ियाँ कहाँ से लाऊँ, बेटा? तुम तो जानते हो, सब ज़ेवर तुम्हारी पढ़ाई में बिक गए।"

यह वाक्य शामनाथ को तीर की तरह लगा। तिनक कर बोले, "यह कौन-सा राग छेड़ दिया, माँ! सीधा कह दो, नहीं हैं ज़ेवर, बस! इससे पढ़ाई-वढ़ाई का क्या ताल्लुक है! जो ज़ेवर बिका, तो कुछ बन कर ही आया हूँ, निरा लँडूरा तो नहीं लौट आया। जितना दिया था, उससे दुगना ले लेना।"

"मेरी जीभ जल जाए, बेटा, तुमसे ज़ेवर लूँगी? मेरे मुँह से यूँ ही निकल गया। जो होते, तो लाख बार पहनती!"

साढ़े पाँच बज चुके थे। अभी मिस्टर शामनाथ को खुद भी नहा-धोकर तैयार होना था। श्रीमती कब की अपने कमरे में जा चुकी थीं। शामनाथ जाते हुए एक बार फिर माँ को हिदायत करते गए, "माँ, रोज़ की तरह गुमसुम बन के नहीं बैठी रहना। अगर साहब इधर आ निकलें और कोई बात पूछें, तो ठीक तरह से बात का जवाब देना।"

"मैं न पढ़ी, न लिखी, बेटा, मैं क्या बात करूँगी? तुम कह देना, माँ

अनपढ़ है, कुछ जानती-समझती नहीं। वह नहीं पूछेगा।"

सात बजते-बजते माँ का दिल धक-धक करने लगा। अगर चीफ सामने आ गया और उसने कुछ पूछा, तो वह क्या जवाब देंगी। अँग्रेज़ को तो दूर से ही देख कर घबरा उठती थीं, यह तो अमरीकी है। न मालूम क्या पूछे। मैं क्या कहूँगी। माँ का जी चाहा कि चुपचाप पिछवाड़े विधवा सहेली के घर चली जाएँ। मगर बेटे के हुक्म को कैसे टाल सकती थीं। चुपचाप कुर्सी पर से टाँगें लटकाए वहीं बैठी रहीं।

एक कामयाब पार्टी वह है, जिसमें ड्रिंक कामयाबी से चल जाएँ। शामनाथ की पार्टी सफलता के शिखर चूमने लगी। वार्तालाप उसी रौ में बह रहा था, जिस रौ में गिलास भरे जा रहे थे। कहीं कोई रुकावट न थी, कोई अड़चन न थी। साहब को व्हिस्की पसन्द आई थी। मेमसाहब को पर्दे पसन्द आए थे, सोफा-कवर का डिज़ाइन पसन्द आया था, कमरे की सजावट पसन्द आई थी। इससे बढ़ कर क्या चाहिए। साहब तो ड्रिंक के दूसरे दौर में ही चुटकुले और कहानियाँ कहने लग गए थे। दफ्तर में जितना रोब रखते थे, यहाँ पर उतने ही दोस्त-परवर हो रहे थे और उनकी स्त्री काला गाउन पहने, गले में सफेद मोतियों का हार, सेंट और पाउडर की महक से ओत-प्रोत, कमरे में बैठी सभी देसी स्त्रियों की आराधना का केन्द्र बनी हुई थीं। बात-बात पर हँसतीं, बात-बात पर सिर हिलातीं और शामनाथ की स्त्री से तो ऐसे बातें कर रही थीं, जैसे उनकी पुरानी सहेली हों।

और इसी रौ में पीते-पिलाते साढ़े दस बज गए। वक्त गुज़रते पता ही न चला।

आखिर सब लोग अपने-अपने गिलासों में से आखिरी घूँट पीकर खाना खाने के लिए उठे और बैठक से बाहर निकले। आगे-आगे शामनाथ रास्ता दिखाते हुए, पीछे चीफ और दूसरे मेहमान।

बरामदे में पहुँचते ही शामनाथ सहसा ठिठक गए। जो दृश्य उन्होंने देखा, उससे उनकी टाँगें लड़खड़ा गईं, और क्षण-भर में सारा नशा हिरन होने लगा। बरामदे में ऐन कोठरी के बाहर माँ अपनी कुर्सी पर ज्यों-की-त्यों बैठी थीं। मगर दोनों पाँव कुर्सी की सीट पर रखे हुए, और सिर दाएँ से बाएँ और बाएँ से दाएँ झूल रहा था और मुँह में से लगातार गहरे खर्राटों की आवाज़ें आ रही थीं। जब सिर कुछ देर के लिए टेढ़ा होकर एक तरफ को थम जाता, तो खर्राटे और भी गहरे हो उठते। और फिर जब झटके-से नींद टूटती, तो सिर फिर दाएँ से बाएँ झूलने लगता। पल्ला सिर पर से खिसक आया था, और माँ के झरे हुए बाल, आधे गंजे सिर पर अस्त-व्यस्त बिखर रहे थे।

देखते ही शामनाथ क्रुद्ध हो उठे। जी चाहा कि माँ को धक्का देकर उठा दें, और उन्हें कोठरी में धकेल दें,

मगर ऐसा करना सम्भव न था, चीफ और बाकी मेहमान पास खड़े थे।

माँ को देखते ही देसी अफसरों की कुछ स्त्रियाँ हँस दीं कि इतने में चीफ ने धीरे-से कहा, “पुअर डियर!”

माँ हड़बड़ा कर उठ बैठीं। सामने खड़े इतने लोगों को देख कर ऐसी घबराईं कि कुछ कहते न बना। झट से पल्ला सिर पर रखती हुई खड़ी हो गईं और ज़मीन को देखने लगीं। उनके पाँव लड़खड़ाने लगे और हाथों की उँगलियाँ थर-थर काँपने लगीं।

“माँ, तुम जाके सो जाओ, तुम क्यों इतनी देर तक जाग रही थीं?” और खिसियाई हुई नज़रों से शामनाथ चीफ के मुँह की ओर देखने लगे।

चीफ के चेहरे पर मुस्कराहट थी। वह वहीं खड़े-खड़े बोले, “नमस्ते!”

माँ ने झिझकते हुए, अपने में सिमटते हुए दोनों हाथ जोड़े, मगर एक हाथ दुपट्टे के अन्दर माला को पकड़े हुए था, दूसरा बाहर, ठीक तरह से नमस्ते भी न कर पाईं। शामनाथ इस पर भी खिन्न हो उठे।

इतने में चीफ ने अपना दायाँ हाथ, हाथ मिलाने के लिए माँ के आगे

किया। माँ और भी घबरा उठीं।

"माँ, हाथ मिलाओ।"

पर हाथ कैसे मिलातीं? दाएँ हाथ में तो माला थी। घबराहट में माँ ने बायाँ हाथ ही साहब के दाएँ हाथ में रख दिया। शामनाथ दिल ही दिल में जल उठे। देसी अफसरों की स्त्रियाँ खिलखिला कर हँस पड़ीं।

"यूँ नहीं, माँ! तुम तो जानती हो, दायाँ हाथ मिलाया जाता है। दायाँ हाथ मिलाओ।"

मगर तब तक चीफ माँ का बायाँ हाथ ही बार-बार हिला कर कह रहे थे, "हाउ डू यू डू?"

"कहो माँ, मैं ठीक हूँ, खैरियत से हूँ।"

माँ कुछ बड़बड़ाईं।

"माँ कहती हैं, मैं ठीक हूँ। कहो माँ, हाउ डू यू डू।"

माँ धीरे-से सकुचाते हुए बोलीं, "हौ डू डू ..।"

एक बार फिर कहकहा उठा।

वातावरण हल्का होने लगा। साहब ने स्थिति सँभाल ली थी। लोग हँसने-चहकने लगे थे। शामनाथ के मन का क्षोभ भी कुछ-कुछ कम होने लगा था।

साहब अपने हाथ में माँ का हाथ अब भी पकड़े हुए थे, और माँ सिकुड़ी जा रही थीं। साहब के मुँह से शराब की बू आ रही थी।

शामनाथ अँग्रेज़ी में बोले, "मेरी माँ गाँव की रहने वाली हैं। उमर भर गाँव में रही हैं। इसलिए आपसे लजाती हैं।"

साहब इस पर खुश नज़र आए। बोले, "सच? मुझे गाँव के लोग बहुत पसन्द हैं, तब तो तुम्हारी माँ गाँव के गीत और नाच भी जानती होंगी?" चीफ खुशी से सिर हिलाते हुए माँ को टकटकी बाँधे देखने लगे।

"माँ, साहब कहते हैं, कोई गाना सुनाओ। कोई पुराना गीत तुम्हें तो कितने ही याद होंगे।"

माँ धीरे-से बोलीं, "मैं क्या गाऊँगी बेटा। मैंने कब गाया है?"

"वाह, माँ! मेहमान का कहा भी कोई टालता है? साहब ने इतना रीझ से कहा है, नहीं गाओगी, तो साहब बुरा मानेंगे।"

"मैं क्या गाऊँ, बेटा? मुझे क्या आता है?"

"वाह! कोई बढ़िया टप्पे सुना दो। दो पत्तर अनाराँ दे ...।"

देसी अफसर और उनकी स्त्रियों ने इस सुझाव पर तालियाँ पीटीं। माँ कभी दीन दृष्टि से बेटे के चेहरे को देखतीं, कभी पास खड़ी बहू के चेहरे को।

इतने में बेटे ने गम्भीर आदेश-भरे लिहाज़ में कहा, "माँ!"

इसके बाद 'हाँ' या 'ना' सवाल ही न उठता था। माँ बैठ गईं और क्षीण, दुर्बल, लरजती आवाज़ में एक पुराना विवाह का गीत गाने लगीं -

हरिया नी माए, हरिया नी भैणे
हरिया ते भागी भरिया है!

देसी स्त्रियाँ खिलखिला के हँस उठीं। तीन पंक्तियाँ गा के माँ चुप हो गईं।

बरामदा तालियों से गूँज उठा। साहब तालियाँ पीटना बन्द ही न करते थे। शामनाथ की खीज प्रसन्नता और गर्व में बदल उठी थी। माँ ने पार्टी में नया रंग भर दिया था।

तालियाँ थमने पर साहब बोले, "पंजाब के गाँवों की दस्तकारी क्या है?"

शामनाथ खुशी में झूम रहे थे। बोले, "ओ, बहुत कुछ। साहब! मैं आपको एक सेट उन चीज़ों का भेंट करूँगा। आप उन्हें देख कर खुश होंगे।"

मगर साहब ने सिर हिला कर अँग्रेज़ी में फिर पूछा, "नहीं, मैं दुकानों की चीज़ नहीं माँगता। पंजाबियों के घरों में क्या बनता है, औरतें खुद क्या बनाती हैं?"

शामनाथ कुछ सोचते हुए बोले, "लड़कियाँ गुड़ियाँ बनाती हैं, और फुलकारियाँ बनाती हैं।"

"फुलकारी क्या?"

शामनाथ फुलकारी का मतलब समझाने की असफल चेष्टा करने के बाद माँ को बोले, "क्यों, माँ, कोई पुरानी फुलकारी घर में है?"

माँ चुपचाप अन्दर गईं और अपनी

पुरानी फुलकारी उठा लाईं।

साहब बड़ी रुचि से फुलकारी देखने लगे। पुरानी फुलकारी थी, जगह-जगह से उसके तागे टूट रहे थे और कपड़ा फटने लगा था। साहब की रुचि को देखकर शामनाथ बोले, "यह फटी हुई है, साहब, मैं आपको नई बनवा दूँगा। माँ बना देंगी। क्यों माँ, साहब को फुलकारी बहुत पसन्द हैं, इन्हें ऐसी ही एक फुलकारी बना दोगी न?"

माँ चुप रहीं। फिर डरते-डरते धीरे-से बोलीं, "अब मेरी नज़र कहाँ है, बेटा! बूढ़ी आँखें क्या देखेंगी?"

मगर माँ का वाक्य बीच में ही तोड़ते हुए शामनाथ साहब को बोले, "वह ज़रूर बना देंगी। आप उसे देख कर खुश होंगे।"

साहब ने सिर हिलाया, धन्यवाद किया और हल्के-हल्के झूमते हुए खाने की मेज़ की ओर बढ़ गए। बाकी मेहमान भी उनके पीछे-पीछे हो लिए।

जब मेहमान बैठ गए और माँ पर से सबकी आँखें हट गईं, तो माँ धीरे-से कुर्सी पर से उठीं, और सबसे नज़रें बचाती हुई अपनी कोठरी में चली गईं।

मगर कोठरी में बैठने की देर थी कि आँखों में छल-छल आँसू बहने लगे। वह दुपट्टे से बार-बार उन्हें पोंछतीं, पर वह बार-बार उमड़ आते, जैसे बरसों का बाँध तोड़ कर उमड़ आए हों। माँ ने बहुतेरा दिल को समझाया, हाथ जोड़े, भगवान का नाम लिया, बेटे के चिरायु होने की प्रार्थना की, बार-बार आँखें बन्द कीं, मगर आँसू बरसात के पानी की तरह जैसे थमने में ही न आते थे।

आधी रात का वक्त होगा। मेहमान खाना खा कर एक-एक करके जा चुके थे। माँ दीवार से सट कर बैठी आँखें फाड़े दीवार को देखे जा रही थीं। घर के वातावरण में तनाव ढीला पड़ चुका था। मुहल्ले की निस्तब्धता शामनाथ के घर भी छा चुकी थी, केवल रसोई में प्लेटों के खनकने की आवाज़ आ रही थी। तभी सहसा माँ की कोठरी का दरवाज़ा ज़ोर से खटकने लगा।

"माँ, दरवाज़ा खोलो।"

माँ का दिल बैठ गया। हड़बड़ा कर उठ बैठीं। क्या मुझसे फिर कोई भूल हो गई? माँ कितनी देर से अपने आपको कोस रही थीं कि क्यों उन्हें नींद आ गई, क्यों वह ऊँघने लगीं। क्या बेटे ने अभी तक क्षमा नहीं किया? माँ उठीं और काँपते हाथों से दरवाज़ा खोल दिया।

दरवाज़े खुलते ही शामनाथ झूमते हुए आगे बढ़ आए और माँ को आलिंगन में भर लिया।

"ओ अम्मी! तुमने तो आज रंग ला दिया! ...साहब तुमसे इतना खुश हुआ कि क्या कहूँ। ओ अम्मी! अम्मी!"

माँ की छोटी-सी काया सिमट कर बेटे के आलिंगन में छिप गई। माँ की आँखों में फिर आँसू आ गए। उन्हें पोंछती हुई धीरे-से बोलीं, "बेटा, तुम

मुझे हरिद्वार भेज दो। मैं कब से कह रही हूँ।"

शामनाथ का झूमना सहसा बन्द हो गया और उनकी पेशानी पर फिर तनाव के बल पड़ने लगे। उनकी बाँहें माँ के शरीर पर से हट आईं।

"क्या कहा, माँ? यह कौन-सा राग तुमने फिर छेड़ दिया?"

शामनाथ का क्रोध बढ़ने लगा था, बोलते गए, "तुम मुझे बदनाम करना चाहती हो, ताकि दुनिया कहे कि बेटा माँ को अपने पास नहीं रख सकता।"

"नहीं बेटा, अब तुम अपनी बहू के साथ जैसा मन चाहे रहो। मैंने अपना खा-पहन लिया। अब यहाँ क्या करूँगी? जो थोड़े दिन ज़िन्दगानी के बाकी हैं, भगवान का नाम लूँगी। तुम मुझे हरिद्वार भेज दो!"

"तुम चली जाओगी, तो फुलकारी कौन बनाएगा? साहब से तुम्हारे सामने ही फुलकारी देने का इकरार किया है।"

"मेरी आँखें अब नहीं हैं, बेटा, जो फुलकारी बना सकूँ। तुम कहीं और से बनवा लो। बनी-बनाई ले लो।"

"माँ, तुम मुझे धोखा देके यूँ चली जाओगी? मेरा बनता काम बिगाड़ोगी? जानती नहीं, साहब खुश होगा, तो मुझे तरक्की मिलेगी!"

माँ चुप हो गईं। फिर बेटे के मुँह की ओर देखती हुई बोलीं, "क्या तेरी तरक्की होगी? क्या साहब तेरी तरक्की कर देगा? क्या उसने कुछ कहा है?"

"कहा नहीं, मगर देखती नहीं, कितना खुश गया है। कहता था, जब तेरी माँ फुलकारी बनाना शुरू करेंगी, तो मैं देखने आऊँगा कि कैसे बनाती हैं। जो साहब खुश हो गया, तो मुझे इससे बड़ी नौकरी भी मिल सकती है, मैं बड़ा अफसर बन सकता हूँ।"

माँ के चेहरे का रंग बदलने लगा,

धीरे-धीरे उनका झुर्रियों-भरा मुँह खिलने लगा, आँखों में हल्की-हल्की चमक आने लगी।

"तो तेरी तरक्की होगी बेटा?"

"तरक्की यूँ ही हो जाएगी? साहब को खुश रखूँगा, तो कुछ करेगा, वरना उसकी खिदमत करने वाले और भी हैं।"

"तो मैं बना दूँगी, बेटा, जैसे बन पड़ेगा, बना दूँगी।"

और माँ दिल-ही-दिल में फिर बेटे के उज्ज्वल भविष्य की कामनाएँ करने लगीं और मिस्टर शामनाथ, "अब सो जाओ, माँ," कहते हुए, तनिक लड़खड़ाते हुए अपने कमरे की ओर घूम गए।

भीष्म साहनी (1915-2003): प्रख्यात हिन्दी लेखक भीष्म साहनी ने 100 से अधिक कहानियाँ, पाँच उपन्यास और कई सारे नाटक लिखे हैं। उन्हें सबसे अधिक प्रसिद्धि अपने लिखे नाटक तमस के लिए मिली जिस पर फिल्म भी बन चुकी है। क्षेत्रीय बोली, उर्दू और पंजाबी भाषा का उपयोग उनके लेखन को प्रभावी बना देता है। अपनी कहानियों में वे आम आदमियों की कशमकश को उजागर करते हैं। भीष्म साहनी को अनेक देशी-विदेशी पुरस्कारों सहित पद्म भूषण और साहित्य अकादमी के पुरस्कार से भी नवाज़ा जा चुका है।

चित्रः प्रियंका गोस्वामी: पर्ल अकादमी, दिल्ली से कम्युनिकेशन डिज़ाइन में स्नातक। वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी यूनिवर्सिटी, बैंगलोर से शिक्षा में स्नात्कोत्तर कर रही हैं। आप पाश्चात्य संगीत गायिका भी हैं और रॉक बैंड के साथ गाती हैं।

यह कहानी 'हिन्दी समय डॉट कॉम' से साभार।